प्रवचन नं. ९ गाथा-२ ता. १६-६-७८ शुक्रवार जेठ सुद-१० सं.२५०४

समयसार दूसरी गाथा, पहले गाथार्थ चलता है।

हे भव्य जीव ! जो `जीव, चरित-दर्शन-ज्ञानस्थित'... यह तो पद्य की रचना के लिये चारित्र पहले आया है। वास्तव में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित रहा है उसे निश्चय से स्वसमय जानो। यहाँ तो तीन बोल लिये है। दर्शन, ज्ञान, और चारित्र, हैं तो अनंत गुणों की पर्याय, दर्शन ज्ञान चारित्र के साथ निर्मल रूप हुयी है परंतु यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का मार्ग (है) दुःख से मुक्त होने का, उसे मुख्यरूप से कहा है।

अर्थात कि दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप आत्मा अनंतगुण स्वरूप, यह अनंत अनंत गुणों की वर्तमान पर्यायरूप में व्यक्तरूप में स्थित हो, उसे यहाँ स्वसमय नाम आत्मा कहा है। आत्मा तो आत्मा है, परंतु जिसे उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र में आया (और) परिणमित हुआ आत्मा ध्रुव, उसे ख्याल में आया उससे आत्मा को स्वसमय कहा जाता है। आत्मा तो आत्मा ही है। परंतु यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र में... (स्थित हुआ वह आत्मा है) सूक्ष्मबात है भाई ! आहाहा !

वैसे आत्मा में गुण तो अनंत हैं। रात को कहा था, जिसप्रकार यह आकाश है, उसके यहाँ के प्रदेश से शुरू करें, यहाँ आकाश के प्रदेश से शुरूआत करें तो इसप्रकार कहीं अंत नहीं। अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत... इसप्रकार यहाँ से शुरूआत करके इसीप्रकार ले जायें तो अनंत-अनंत और दोनों का एकत्र करें तो भी अनंत...अनंत। यहाँ भी अनंत, यहाँ (भी) अनंत।

एक समय में एक श्रेणी के प्रदेश, ऐसी तो अनंती श्रेणी हैं। - ऐसा एक प्रदेश, एक प्रदेश की श्रेणी, जिसका आदि और अंत नहीं। ऐसी श्रेणी एक एक ऐसी अनंत श्रेणियाँ हैं। अब यहाँ तो - ऐसा कहना है, कि जो अनंत अनंत आकाश के प्रदेश जिसका अंत नहीं, उसका अन्तिम .... ? अंत क्या ? फिर क्या ? इसीप्रकार काल की भी आदि नहीं। क्या वर्तमान का अंत आता है (नहीं) ? अनादि अनंत, आदि नहीं फिर भी अंत आये ? भविष्य का अंत नहीं। परंतु शुरूआत यहाँ से कहलाये तो सादि अनंत कहलाये और समुच्चय कहें तो अनादि-अनंत कहलाये। आहाहा !

इसप्रकार आत्मा में और परमाणु में भी इतने ही गुण हैं, कि वह आकाश के प्रदेश से भी अनंतगुणे, उसका अर्थ क्या हुआ ? आहा ! गंभीर गजब बात है !! आत्मा में संख्या अपेक्षा अनंत गुण हैं, इसीप्रकार यहाँ तीनों में कहा, परंतु है तो

अनंत गुण में स्थित। यह अनंत गुण हैं उसमें पहला-अंतिम नहीं। परंतु यह अनंत गुण हैं उसमें गिनती करने जायें कि यह एक, दो, तीन, चार, पांच तो उसका अंतिम कौन-सा गुण ? उसमें यह नहीं आवे। आहाहा ! क्षेत्र भले शरीर प्रमाण और क्षेत्र अर्थात अपना क्षेत्र असंख्य प्रदेश प्रमाण, परंतु उनके जो गुणों की संख्या... अनंत, उसमें पहला दूसरा - ऐसा नहीं। कि पहला ज्ञान फिर दर्शन - ऐसा नहीं। एक साथ फिर भी एक साथ होने पर भी उसको गिनती से गिनने लगे तो.... कि यह एक, दो, तीन, चार तो इसका आखरी गुण कौन ? आहाहा ! आखरी है ही नहीं। आहाहा ! यहाँ तो क्या बात कहते हैं पण्डितजी ! अनंत जो संख्या अपेक्षा आत्मा में गुण हैं, उन गुणों में पहला या आखरी नहीं। हैं एक साथ परंतु एक साथ में यह एक, दो, तीन, चार - ऐसा आखरी कौन ? आहाहा ! गिनने में आखरी आता ही नहीं। क्या कहते हैं यहाँ ?

अरे ! इसने निजतत्त्व, कैसा और कितना है - ऐसा इसने अंतर से सुना नहीं। आहाहा ! उसके गुणस्वरूप भाव... उसके गुणों की संख्या अपार तो गुण, गुण, गुण, ज्ञान, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आनंद शांति अस्तित्व वस्तुत्व इसप्रकार कहीं अंतिम गुण आये - ऐसा अंत नहीं। आहाहा ! जिसमें अंत बिना का, आखरी नहीं ऐसे अंत नहीं। आहाहा ! जिसमें अंत बिना... आखरी नहीं - ऐसे अनंत गुण, यहाँ तो क्या कहते हैं। आहाहा ! अरे ! इसने निजतत्त्व को जानने का प्रयत्न किया ही नहीं। शेष सभी यह संसार की होली पाप पूरे दिन (इसने किया)।

यहाँ तो कहते हैं - **`चरितदंसणणाण ठिदो' तं ही स समयं जाण।** इसमें तो जितने गुण हैं। जिन गुणों की संख्या का अंत... कहीं अंत नहीं। इतनी संख्या इतनी संख्या, इतनी संख्या, अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत अनंत इसे अनंत को अनंत गुणा वर्ग करो तो भी यह गुण आखरी गुण - ऐसा उसमें नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा यह असीम तत्त्व- ऐसा अस्तित्व, जितने गुण हैं उतनी ही उनकी पर्याय हैं। एक समय में अनंती पर्याय हैं। उसमें पहली आखरी यह (प्रश्न) नहीं कारण कि एक समय में ही अनंती पर्याय साथ में हैं। फिर भी गिनती से गिनने लगो एक, दो, तीन, चार, संख्या, असंख्य, अनंत अनंत अनंत अनंत इन अनंती पर्याय में आखरी कौन सी पर्याय ? यह प्रश्न नहीं होता। आहाहाहा ! बापू ! बहुत सूक्ष्मतत्त्व है... आहाहा ! यह गंभीर (तत्त्व) सर्वज्ञ के अलावा किसी ने देखा नहीं, जाना नहीं और कहा नहीं। आहाहा !

उसके अनंत गुणों की संख्या, आकाश के क्षेत्र का अंत नहीं। आकाश आकाश आकाश आकाश दशों दिशाओं में फिर क्या ? फिर क्या ? कहीं आकाश का अंत

नहीं। ***आकाश के इतने अधिक प्रदेशों से अनंतगुणे गुण यहाँ (आत्मा में) है। जिन आकाश के प्रदेशों का अंत नहीं।*** आहाहाहा ! उससे अनंत गुणे गुण, संख्याअपेक्षा अनंत गुणे गुण, वह रहें असंख्य प्रदेशों में, एक समय में रहते हैं, (आहा !!) रहें असंख्य प्रदेश में, रहें एक समय में रहें अनंत... परंतु अनंत का यह आखरी गुण यह... आहाहा ! वहाँ यह आखरी यह शब्द ही नहीं और उस भाव में नहीं। आहाहा ! ऐसे अनंत अनंत भावरूप गुण वह यहाँ कहेंगे आगे। यह अनंत धर्मों में रहा हुआ - एक धर्मीपना वह द्रव्य है - ऐसा आगे आयेगा। आहाहाहा !

भाषा साधारण है - ऐसा जान कर उसकी गंभीरता नहीं बैठती, भाषा तो जड़ है। जो यह अनंतगुण हैं, उनका कोई अंत नहीं। आखरी नहीं अर्थात ? यह आखरी गुण है, आखरी गुण है अनंत अनंत अनंत गिनने पर कि यह आखरी - ऐसा इसमें है ही नहीं। क्या कहते हैं यह ? `यह बात पहली बार आयी है किसी दिन' कहने में आयी नहीं। समझ में आया ? अनंत हैं - ऐसा सब बहुत बार कहा परंतु अनंत हैं, अनंत का, अनंत का, आखरी आखरी आखरी कौन (गुण) ? आहाहाहाहा ! असंख्य प्रदेश में एक समय में अनंत की संख्या में यह आखरी - ऐसा कोई आखरी आता ही नहीं। आखरी जैसा अंत ही नहीं। आहाहाहाहा ! यह ऐसी बात है।

(श्रोता :- आपसे व्याख्यान में कहने की विनंती की थी, रात को बात तो हो गई थी) हाँ, बहनों के कान में पड़े ना! हां रात्री को बात हो गई थी। प्रथम बार की है। ***इतने वर्षों में पहलीबार यह कही है कि अनंत भाव में, यह अनंत की संख्या का आखरी गुण कौन ? - ऐसा है ही नहीं इसमें (छोर हो तो आखरी हो न) आहाहाहाहा !*** इसीप्रकार अनंत गुणों की एक समय, काल अपेक्षा एक समय... असंख्य प्रदेशों का आखरी हिस्सा क्षेत्र का, उसमें होनेवाली अनंती पर्याय। गुण तो पूरे असंख्य प्रदेशों में हैं। इसीप्रकार एक पर्याय है, उसका अंतिम असंख्य प्रदेश का अंतिम अंश उसमें उत्पन्न होनेवाली अनंती पर्यायें, क्षेत्र इतना अंश, काल-एकसमय, इन पर्यायों की संख्या इतनी अनंती। आहाहा ! कि यह पर्याय आखरी... इसप्रकार गिनती में आखरी पर्याय होती ही नहीं। आहाहाहा !

इसप्रकार..... अनंत अनंत तो कहते हैं परंतु (अनंत) किस प्रकार ? आहाहा ! क्षेत्र का अंत तो अभी इसमें कुछ होगा। कुछ होगा होगा अंदर, परंतु इतनेमें भावों का अंत नहीं, भावों की संख्या जितनी है... उसकी संख्या का कहीं अंत नहीं, ***समय एक, क्षेत्र, असंख्यात प्रदेश और भावों की संख्या का अंत नहीं `यह' आखरी - ऐसा अंतिम नहीं।*** आहाहाहाहा ! ऐसी ही अनंती पर्याय, प्रदेश का एक अंश, समय में एक समय और संख्या में अनंत पर्याय, उसमें पहली आखरी तो नहीं इसमें कहीं,

एक साथ में हैं अनंत, फिर भी अनंत में यह यह यह यह यह अनंत अनंत यह आखरी है (- ऐसा नहीं है) आहाहा ! - ऐसा तत्त्व भगवान सर्वज्ञ सिवाय कहीं किसी ने देखा नहीं और किसी ने कहा नहीं।

एक समय में अनंत पर्यायें, उसमें से एक पर्याय अब लें, ज्ञान की एक पर्याय अनंती पर्याय की संख्या में आखरी पर्याय नहीं, अंत नहीं इतनी पर्याय, आहाहा ! क्यों ? (आकाशके) प्रदेशों की संख्या का अंत नहीं यहाँ, आत्मा में पर्याय की, संख्या का अंत नहीं। आहाहा ! अब एक एक पर्याय में ज्ञान की एक पर्याय यह ज्ञेय प्रमाण। ***ज्ञान की एक पर्याय यह ज्ञेय प्रमाण, ज्ञेय कितने ? कि अनंत आत्मा, अनंत परमाणु वह ज्ञेय और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण। ज्ञेय कितने ? कि लोकालोक प्रमाण।*** आहाहा ! एक समय की पर्याय में प्रमेय लोकालोक, जिसके भावों का अंत नहीं ***उन उन परमाणुओं के गुणों का और उनकी पर्यायों का (अन्त नहीं) वह सब यहाँ एक समय की ज्ञान पर्याय में जानने में आ जाये श्रुतज्ञान की पर्याय में ही, केवलज्ञान की तो बात क्या करना ?*** आहाहाहा !

ऐसी एक समय की पर्याय में भी अनंत अविभाग प्रतिच्छेद (हैं)। ज्ञान की एक समय की पर्याय में अनंत द्रव्य और एक एक द्रव्य के अनंत गुण, जिसका पार नहीं और एक एक गुण की पर्याय, जिनका (भी) पार नहीं - उसका पार इस श्रुतज्ञान की पर्याय में जान लिया। आहाहाहा !

इस ज्ञान की एक समय की पर्याय में ऐसे अनंत लोकालोक जाने, (अनंत) द्रव्य, अनंतगुण, तो इतने भाग होगये, एक पर्याय में, अंश, कितने अंश ? कि इन अंशों का अंत नहीं। आहाहा ! अनंत का इसप्रकार अंत नहीं। (श्रोता :- आखरी नहीं) अंत नहीं - ऐसा बोला करो - ऐसे काम नहीं चले। अनंत...अनंत...अनंत... तो द्रव्य हैं अनंत (में) भी उसका अंत आ जाता है। क्षेत्र अनंत, काल अनंत, भाव अनंत, पर्याय अनंत उसका कोई पार नहीं। आहाहा ! उसकी संख्या कितनी है ? उसका अंतिम हिस्सा कौन ? इतनी संख्या में उसकी पर्याय और एक एक पर्याय में अनंत द्रव्य और अनंत उनके गुण, जिसके गुणों का अंत नहीं, पर्याय का अंत नहीं इतनी संख्या (है), काल अनन्त है - ऐसा नहीं, काल भले एक समय हो परंतु एक समय का उसका गुण और पर्याय, एक समय की पर्याय में जानने में आये (तो) एक समय की पर्याय के भाग कितने ? उसके भाग, टुकड़े करते, करते, करते आखरी अविभाग जिसका दूसरा विभाग न हो सके। ओहोहो ! ऐसी एक समय की पर्याय में अनंत अविभाग प्रतिछेद उसके अविभाग प्रतिछेद में आखरी कौन ? अंत नहीं !

अब, यहाँ तो - ऐसा कहना है कि जितने गुण हैं उतने जहाँ दर्शन ज्ञान चारित्र

में स्थित होते हैं, तब बात तीनों की ली है यहाँ भाई ! परंतु अनंत गुणों की पर्याय वहाँ व्यक्त होकर स्थिर होती है। शुद्धि में कितनी शुद्ध होती है और कितनी शुद्ध नहीं होती - ऐसा नहीं।

परंतु यहाँ दर्शन ज्ञान चारित्र की मुख्यता गिनकर, उसमें जीव जो पूरा (संपूर्ण) अनंतगुणों का पिण्ड है वह स्थित होता है। राग में स्थित होता है यह बाद में कहेंगे। आहाहा ! अपने अंदर जो अनंत गुण हैं, उनका एकरूप द्रव्य है। अनंत धर्म जो गुण उनका धारण करनेवाला एक तत्त्व, वह तत्त्व जब अपनी निर्मल पर्याय में स्थित होता है तब उसके जितने गुण हैं, उतने गुणों का सभी गुणों का अंश प्रगट होता है। फिर भी यहाँ तीन कहे हैं, वह मुख्यरूप से मोक्षमार्ग की पर्याय की अपेक्षा से... समझ में आया ?

गंभीर है भाई ! आहाहाहा ! (श्रोता :- अगाध गंभीर... अगाध गंभीर समुद्र जैसा है !) दूसरे बहुत विचार आये हैं... अंत आये - ऐसा नहीं, आहाहा ! और जो जीव पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित हुआ है... अब यहाँ कर्म के प्रदेशों में स्थित - ऐसा शब्द प्रयोग किया है। ***बात यह है कि पुद्गल के निमित्त से होनेवाली विकारी अवस्था, उसमें स्थित है।*** उसमें अनंतागुण विकाररूप नहीं, निर्मलरूप (है), उसमें अनंता गुण निर्मलरूप में थे। समझ में आया ?

पहले जो दर्शन ज्ञान (चारित्र) में स्थित तीन मुख्य लिये, परंतु उसमें जितनी संख्या में गुण हैं, जिसका अंत नहीं उन सभी गुणों की आंशिक व्यक्तता प्रगटरूप में स्थित है। आहाहा ! उसे यहाँ स्वसमय आत्मा कहते हैं।

यह तो उन्नीसवीं बार पढ़ा जा रहा है। वही का वही आये ? आहाहा !

अब इसमें दूसरा कहना है। कि 'जो जीव पुद्गल कर्मों के प्रदेशों में'... यह पुद्गल कर्म तो जड़ अजीव है। परंतु उसके अनुभाग में... एक समय की स्थिति (पर्याय) है वहाँ वर्तमान (पर्याय), वैसे भले कायम रहना - ऐसा नहीं, ***परंतु उसके अनुभाग में जो एकाग्र होता है, उसमें जितने गुण हैं वह सभी गुण कर्म के प्रदेश में स्थित नहीं हुये। गुणों की पर्याय तो सदा निर्मल रहती है। कुछ समझ में आया ? यह एक बात। दूसरी बात, कर्मरूप परिणमित हुये जो परमाणु हैं, उसमें भी कर्म परमाणु में जितने गुण हैं, वह सभी गुण कर्मरूप परिणमते हैं - ऐसा नहीं।*** आहा ! जगत में पाप के कार्य से फुरसत कहाँ, कितने पापों की गठरी बांधी, चले जाना है चार गति में परिभ्रमण करने। आहाहा ! अभी भी यह क्या वस्तु है, वह समझने का भी समय नहीं निकालता। आहाहाहाहा ! आहाहा !

- ऐसा जो अपार स्वभाव तथा पर्याय, उसका अंदर पता लगे, ज्ञान और श्रद्धा

उसे जान ले, उसे राग में (से) रस (रुचि) उड़ जाये। राग उड़ जाय - ऐसा नहीं, राग रहता है। समझ में आया ? ऐसे जो अनंतगुण और अनंती पर्याय, अंत बिना की, अन्त रहित ऐसे द्रव्य की दृष्टि जिसे होती है, उसको अस्तित्व का स्वीकार होता है, इसके रस के सामने उसे राग में रस नहीं रहता। राग तो अमुक (चारित्र) गुणों की पर्याय है और यहाँ तो अनंत अनंत अनंता, अंत नहीं आये इतने गुण। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बापू ! वीतराग मार्ग... का प्रथम सम्यग्दर्शन क्या चीज है यह..... गजब बात है।आहाहा !

इसके बिना व्यर्थ भटकता मरा है चौराशी के अवतार में। आहाहा ! यह लखपति सेठ कहलाते हैं यह मरकर गधे होते हैं, कुत्ते होते हैं, क्योंकि धर्म क्या चीज है इसकी अंतर में खबर नहीं और मांस-दारु आदि नहीं खाते-पीते हों इसलिये नरक में तो नहीं जायें। सिद्धांत में लेख है शास्त्रों में कि यह सभी ढोर तिर्यंच (तिरछी गति) में जानेवाले हैं। आहा ! जैसा स्वरूप है वैसा जिन्होंने जाना नहीं, माना नहीं, पहचाना नहीं, उसके विरुद्ध जो तिरछे भाव, विकारी भाव वक्रता करके .... किये हैं, वह वक्र अर्थात टेढ़ा हो जाता है। वह मर कर तिरछे अर्थात तिर्यंच के शरीर में जानेवाले हैं कारण कि तिर्यंच का शरीर - ऐसा (तिरछा) आड़ा है, मनुष्य का ..... इस प्रकार खड़ा है। गाय, भैंस गिलहरी आदि का इस प्रकार आड़ा है न ? टेढ़ा, आहा ! उनकी इतनी बड़ी संख्या है। बहुत संख्या (में तो) वहाँ पूर्ति करनेवाले हैं। आहाहा !

यहाँ दूसरा कहना है, कि कर्म के प्रदेशों में स्थित है तो सभी गुण तो विकारी पर्याय में स्थित नहीं एक बात, और जो कर्म परमाणु हैं वह तो विभाव रूप में परिणमित हुये हैं। एक (भिन्न) परमाणु स्वभाव रूप में है। तथा यह (कर्म) तो विभावरूप में परिणमित हुआ है। परंतु विभावरूप परिणमन में कर्म की पर्यायरूप सभी गुण परिणमे हैं - ऐसा नहीं। समझ में आया ?

जैसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के परिणमन में सर्व गुण शुद्धरूप-व्यक्तरूप परिणमें हैं। इसीप्रकार परमाणु में विकाररूप सभी गुण परिणमे हैं - ऐसा नहीं, आत्मा में भी - ऐसा है। ***आत्मा में भी अशुद्धपना-परिणमन जो है, वहाँ सभी गुण अशुद्धपने होते हैं - ऐसा नहीं। कितने ही गुण अशुद्ध होते हैं शेष तो, कितने ही गुण अभव्य के भी शुद्ध हैं पर्याय में।*** जैसे अस्तित्वगुण... अस्तित्व का अशुद्ध परिणमन क्या होगा ? अस्तित्व का अशुद्ध (रूप) क्या होगा ? रहना कम हो जाये ? बात समझ में आती है ? आहाहा ! पण्डितजी !

यह तो इसमें (परमाणु में) एक प्रदेशत्वनाम का गुण है, सामान्य (गुणों) में वह

विकाररूप परिणमे तो दो परमाणु चार परमाणु रूप होता है, तब वह अकेला नहीं रहता नहीं। आहाहा ! वह कर्मरूप परिणमित पर्यायें, उनके परमाणुमें जितने गुण हैं, उनके सभी (गुण) कर्म रूप नहीं परिणमे, अमुक गुणों की ही पर्याय कर्मरूप हुयी है। आहाहा ! उसमें जो जीव रूका हुआ है, इसप्रकार अनंतगुणों में (अशुद्धता) न आने पर (भी), अनंतपर्यायें कर्म के रस की है, वहाँ अटका है वह परसमय अर्थात अनात्मा है। (हजारों लोग जानबूझ करके भी इस तत्त्व का विरोध करते हैं वह तिरछे (भाववाले) है)। वक्रता करें, विरोध के लिये करें, विरुद्ध श्रद्धा करें आत्मा से विरुद्ध विकार भाव करें..... आहाहाहा ! `गोम्मटसार' में पाठ है, तिर्यंच क्यों होते हैं ? `तिर्यंच' है न शब्द, तिर्यंच अर्थात तिरछा तिरछा अर्थात आड़ा, बहुत संख्या तो इन्हीं की है। आहाहा ! परंतु किसे फिक्र है। आहाहा ! बाहर में थोड़ी अनुकूलता रहे, (तो) मरने के बाद में कहाँ जायेंगें, कौन जाने यह कोई (खबर) नहीं।

यहाँ कहते हैं;... एक श्लोक में कितना समा दिया है, और उसे कर्म के प्रदेश कहा है। वह कर्म के प्रदेश परमाणु तो जड़ है। परंतु उसका अनुभाग जो है उसके प्रदेश का (अंश) भाग कहलाता है, उस तरफ के लक्ष्य में जाकर, जो विकाररूप परिणमा है वह अनात्मा परसमय कहा जाता है। आहाहा ! ऐसी बात है, कर्म रूप भी परमाणु के अनंत गुण परिणमे नहीं। आहाहा ! ***इसप्रकार भगवान आत्मा के अनंत गुण... मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय आदि परिणमन में अनंत गुण नहीं परिणमें, कुछ ही गुण..... बहुत विचार करके निकाले थे बहुत वर्ष पहले बहुत ज्यादा नहीं निकले इक्कीस गुण निकले थे, विपरीतपने के। निकाले थे बहुत वर्ष पहले, छोटे गाँव में एकांत रहता है न ! विपरीत (गुण) आत्मा में मिथ्यात्व, चारित्र आनंद, प्रदेशत्व ऐसे-ऐसे कर्त्ता, कर्म, कारण, संप्रदान, अपादान ऐसे ऐसे गुण विकाररूप होते है। सभी गुण नहीं होते, समझ में आया ?***

विचार तो बहुत आते है... एक पर एक बहुत। आहाहाहा ! यहाँ कहते हैं कि `जो जीव पुद्गल कर्म के प्रदेशों में'... अर्थात कि यह कर्म का ही भाव है, विकार आत्मा का स्वभाव नहीं। विभाव, पुण्य और पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति, काम और क्रोध कमाना-धमाना उसका ध्यान, यह सभी पाप। आहाहा ! उसमें जो स्थित है... उसे परसमय जानो। उसे अनात्मा जानो। आहाहा ! क्योंकि इसकी पर्याय में विकाररूप होना... यह विकार आत्मा नहीं। विकार यह आत्मा का कोई स्वभाव नहीं। विकार रूप परिणमा है, हुआ है वह अनात्मा है। आहाहाहा !

यह तो शब्दार्थ हुआ अब इसकी टीका।

`समय' प्रथम समय प्रारंभ किया (कहा) टीका :- `समय' शब्द का अर्थ इस

प्रकार है `**सम्**' तो उपसर्ग है। व्याकरण के नियमानुसार `सम्' सम उपसर्ग है। उसका एक अर्थ `एकपना' - ऐसा है उसका अर्थ `एकपना' - ऐसा है। `**सम्**' एकपना `**अयगतौ**' समय है न ? समय `**सम और अय**' दो शब्द इकट्ठे हैं। सम् का अर्थ एकपना `**अय गतौ**' धातु है, `अय गतौ' धातु है। यह धातु (का अर्थ) परिणमन करना यह। आहाहा ! यह `अय' धातु का गमन अर्थ भी है, `अय' अर्थात गमन करना, परिणमन करना, गमन करना, और ज्ञान अर्थ भी है। गमन करना और परिणमना, ज्ञानरूप हो ! `गमनरूप में परिणमना और ज्ञान अर्थ।' इसलिये एक साथ ही युगपद जानना और परिणमन करना... दो क्रियायें जो एकत्वपूर्वक करे, दो क्रियायें एक समय में एकत्वपूर्वक करे, परिणमे और जाने परिणमे और जाने। ऐसी एक समय में दो क्रिया को एकरूप में करे। आहाहाहा ! है ? वह समय है। यह `समय' की व्याख्या की।

फिर से `**सम और अय**' आत्मा लेना है न यहाँ अभी तो अर्थात `**सम्**' एकरूप में `**अय**' गमन करना परिणमन करना और जानना, ऐसी दो क्रिया एक समय में जो करे उसे `समय' कहा जाता है।

`समय' कैसे पहचाने ? वह पूँछते थे उस दिन दिल्ली (वाले)... `समय' क्यों कहा ? अरे..... कहा वस्तु का स्वरूप है `समय' = सम् + अय, अतः समय कहा है। आहाहा ! आत्मा को समय क्यों कहा ? कि एकरूप परिणमे और जाने एक समय में एकत्वरूप से दो क्रिया करे... उसे समय कहते हैं। यह समय वह आत्मा है। यह आत्मा ही परिणमे और जाने। दूसरे पदार्थों में परिणमन (गमन) है, परंतु जानना नहीं। गमन की अपेक्षा दूसरों को `समय' कह सकते हैं। परंतु यहाँ तो जानना-गमन करना दोनों अर्थ में जो हो उसे `समय' कहते हैं। आहाहा !

बाद में स्वसमय लेंगें। अभी तो समय किसे कहें आहा.....। यह जीव नामक पदार्थ यह समय का अर्थ किया, अब जीव के साथ तुलना करते हैं। `यह जीव नामका पदार्थ एकत्वपूर्वक... एकत्वपूर्वक सुधारा है।' `एक ही समय' में एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणता भी है और जानता भी है, इसलिये वह समय है, इसलिये उस आत्मा को समय कहते हैं। जानने का कार्य भी करे और परिणमे, एक साथ दोनों करे। आहाहा ! समय एक, दो क्रिया, परिणमन करने की और जानने की `एकसाथ' कैसे कहा ? कि परिणमे पहले और जाने बाद में - ऐसा नहीं। परिणमन करना और जानना एक ही समय है। आहाहा ! दोनों को एकत्वपूर्वक करे एकत्वपने करे। आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात है।

समयसार सुनना-समझना बापू ! कठिन काम है। सारी दुनियाँ बाकी तो सब करती है। पशु की तरह मेहनत करती है, यह सभी पूरे दिन (करती), राग को

इसको उसको होना है न पशु, पशु जैसी मेहनत करते हैं। आहाहा !

(श्रोता :- पैसावाले इसमें आ जाते ?) पैसा के बाप हों, बड़े अरबपति हों सभी पशु होनेवाले हैं, पशु, कौआ और चिंटी होनेवाले, बकरी के बच्चे होनेवाले, छिपकली के पेट में छिपकली होंगे- ऐसा होता है न बापू ! वस्तु स्वरूप - ऐसा है। आहाहा ! अरे ! इसने देखा और जाना है कहाँ देखा है कहाँ ? उसे आवश्यकता कहाँ है ? आहाहा ! अनंतकाल बीत गया प्रभु ! तुमने इसप्रकार विपरीतपना किया है। आहाहा ! भगवान आत्मा अनंत गुणों का परिणमन एकसमय (में) और उसी समय ज्ञान का जानना। दूसरे अनंत गुण परिणमते हैं परंतु जानते नहीं। आहाहा !

एक समय में अर्थात कि सूक्ष्मकाल में। आहा ! भगवान आत्मा जो अनंतगुण जो अन्त बिना के कहे, उन सभी गुणों का एक समय में परिणमन, बदलना हलचल होना... ध्रुव है इसमें हलचल नहीं। उत्पाद-व्यय में हलचल है। अर्थात यह ध्रुव... ध्रुवरूप रहकर और अनंता गुणों में हलचल अर्थात् परिणमन होता है और उसीसमय ज्ञान जानने का कार्य करे, उसे आत्मा कहते हैं।

यह सभी तुम्हारे जवाहरात ववाहरात का (जानपना), वह यहाँ शून्य के बराबर है। आहाहा !

अरे प्रभु ! - ऐसा कहाँ है भाई ? आहाहा ! अनंत काल से असंख्य क्षेत्र में अनंत बार उत्पन्न हुआ। आहाहा ! यह आत्मा... कितना है ? कैसा है ? और यह कितना (महान) आत्मा ? एक समय में अनंता गुणों का छोर नहीं, आखरी नहीं. उनका परिणमन करे, आहाहा ! और उसीसमय एकत्वपूर्वक ज्ञान करे, दोनों क्रिया करे। आहाहा ! काल भेद नहीं। आहाहा ! भाई ! जिस समय परिणमता है उसी समय जाने उसे और ज्ञान भी जिस समय परिणमता है उसी समय उसे जाने कि यह ज्ञान स्वयं परिणमता है, ज्ञान का परिणमन तो आ गया न। सभी गुण परिणमते हैं तो उसमें यह ज्ञान (गुण) भी परिणमता है - इस प्रकार आ गया। एक साथ जानता भी है। परिणमता है और जानता है। जिस समय परिणमता है उसी समय जानता है, इसलिये एकत्वपूर्वक करता है - ऐसा कहा न ? आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात है बापा !!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की बात प्रमाण से निकली है। आहा ! गणधरो संतो केवली के नजदीक रहनेवाले, नजदीक में रहकर जिनने सुना और अनुभव किया है, आहाहा ! उनका कहा हुआ यह शास्त्र है। इसलिये यह `प्रमाणभूत' है। आहाहा ! समझ में आया ? आहा !

एक समय में परिणमता भी है, परिणमता है, उसमें ज्ञान भी साथ में परिणमता

है - यह आ गया न ? आहाहा ! एक ही समय में ज्ञान परिणमता है न, अनंत गुण परिणमते हैं। ***परंतु एक ही समय परिणमित होता ज्ञान ज्ञान को जानता है और सभी को जानता है।*** है ? आहाहा ! एक ही समय में परिणमन भी करे और एकत्वपूर्वक जानता है सभी को जानता है हो ? जिस समय परिणमन होता है अपना और सभी गुणों का, उसी समय उसे जानता है। आहाहा !

अभी तो आत्मा कहना... खबर ही नहीं पड़े न, आहाहा ! उसे धरम हो जाये... आहा ! घूम घूम के मर गया चौरासी के अवतार में, ऐसे तो अनंतबार अवतार किये, शास्त्रों को भी जाना और पढ़ा परंतु यह भाव इस प्रकार है यह अंदर परिणमा नहीं - यहाँ - ऐसा कहा। यहाँ परिणमन का कहा न ? आहाहा ! एकत्वपूर्वक एक ही समय में अपने ज्ञान का और अनंतगुण का परिणमन एक समय में, उसी समय उन सभी का ज्ञान भी उसी समय करे। आहाहा ! परिणमन करना और ज्ञान करना एक ही समय में है। (पहले) परिणमता है और बाद में जानता है - ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है जैन धर्म (मैं) यह जैनधर्म। आहाहा !

(`एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणमता भी है और जानता भी है') `इसलिये वह समय है'। आहाहा !

`यह जीव पदार्थ कैसा है ? सदा परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ होने से... आहाहा ! सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से। वह तो उसका स्वभाव है और वह स्वभाव में रहा हुआ है। अर्थात `उत्पादव्ययध्रुव की एकतारूप अनुभूति जिसका लक्षण है... ऐसी सत्ता से सहित है' तीन कहे।

`सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ' परिणमता है - यह उत्पाद व्यय, स्वभाव में है... यह ध्रुव... आहाहा ! है ? `सदा ही परिणमन स्वरूप' बापू ! यह तो मंत्र है। यह कोई कहानी नहीं। यह तो सर्वज्ञ त्रिलोक नाथ ! जिनके पास एक भव में मोक्ष जानेवाले इन्द्र सुनते हैं। वह पिल्ले की तरह (नरम होकर) सभा में बैठते हैं। आहाहाहा ! यह कोई कहानी नहीं-कोई किस्सा नहीं। आहाहा ! यह चैतन्य हीरा की बातें चैतन्यमणि की बातें है यह तो... आहाहा ! यह चैतन्य हीरा कैसा है ? आहाहा ! कहते हैं... `सदा ही परिणमन'... उसकी पर्याय का बदलाव सदा निरंतर है। आहाहा ! एक धारावाही सदा ही परिणमन है। परिणमे पर्याय पर्याय पर्याय उत्पादव्यय उत्पादव्यय उत्पादव्यय होता ही रहता है। नयी उत्पन्न हो पुरानी नाश हो। दूसरे समय नयी उत्पन्न हो पुरानी व्यय हो - ऐसा परिणमन सदा ही... क्रमशः आहाहा ! देखो ! इसमें क्रमसर भी निकलता है। आहाहा !

सदा ही परिणमन स्वरूप, स्वभाव में रहा हुआ यह ध्रुव। आहाहा ! यह परिणमन

स्वरूप उत्पाद-व्यय और स्वभाव में रहा हुआ ध्रुव। आहाहा ! यह उत्पाद व्यय और ध्रुव स्वभाव में स्थित हुआ है। यह उत्पादव्यय और ध्रुव स्वरूप में रहा है वह हमेशा नित्य स्वरूप। आहाहा ! (श्रोता :- कायम रहना और बदलना यह तो परस्पर विरोध है) टिकना और बदलना दो स्वरूप है। नित्य परिणामी, ध्रुव उत्पादव्यय। आहाहा !

अरे ! इसने अपनी चीज को... और उन सर्वज्ञ परमेश्वर... केवली परमेश्वर ने कही है यह बात... इसने सुनने की दरकार नही की। आहा ! और - ऐसा स्वरूप दिगम्बर संत के अतिरिक्त कहीं है नहीं। लोगों ने सब जगह उलटा ही किया है, परन्तु परीक्षा किए बिना सच्चा-झूठा एक सा मालुम पड़ता है ? आहाहा ! जिसका एक एक पद और एक एक पंक्ति, पार पायें - ऐसा नहीं, इस वस्तुमें इतना है। आहाहा !

वह कहता है कि समयसार हम पढ़ गये। पढ़ा बापा। (श्रोता :- शब्द पढ़े भाव समझे बिना) शब्द पढ़े उससे क्या हुआ भाई ? अंदर भाव क्या है वह ख्याल में नहीं आये, वह पढ़ना क्या पढ़ना ? पहाड़ा दुहरा लिया। गडियों समझते न क्याकहते हैं ? उसे कुछ कहते हैं यह गडिया की भाषा दूसरी कहते हैं। (श्रोता :- पहाड़ा) पहाड़ा-पहाड़ा। चन्दुभाई तो अभी नहीं आये, रात्री को नहीं थे न, अभी भी नहीं दोनों में नहीं थे। ऐसी बात जिंदगी में पहलीबार कहने में आयी है। भाव और अंत बिना का भाव, ***अंत बिना की पर्याय/काल एक साथ भले हो अंत बिना के अविभाग प्रतिच्छेद फिर भी वह ज्ञान की पर्याय उसका अंत ले लेती है, अंत ले लेती है इसलिये वहाँ अंत आगया - ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय है इसलिये वहाँ अंत आगया - ऐसा नहीं।*** ज्ञान की पर्याय उसका अंत ले लेती है 'जानती है' कहा है न !

अनंत द्रव्यों का ध्रुवपना और अनंत द्रव्यों का उत्पाद व्ययपना, यहाँ आत्मा की बात करते हैं, परंतु आत्मा की पर्याय में, अनंत द्रव्य गुणपर्याय में परिणमन में जानने में, आ जाते हैं। वह ज्ञान के परिणमन में जानने में आ जाते हैं। आहाहा !! उसके अपने अस्तित्व में ही अनंतद्रव्य-गुण-पर्याययें, यह ज्ञान की पर्याय में परिणमन होने पर उसमें जानने में आ जाते हैं। आहाहा ! सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ होने से... उत्पादव्ययध्रुव की एकतारूप अनूभूति... क्या कहा देखा ? परिणमन है, उत्पादव्ययरूप उपजे व्यय, उपजे नष्ट हो, उस समय में ध्रुव भी एक समय में। ***इन तीन की एकतारूप अनुभूति, अर्थात तीनों का एकरूप होना, तीनों का एक रूप होना जिसका लक्षण है - इसप्रकार अनुसरण करके होना। उत्पाद-व्यय और ध्रुव का अनुसरण करके होना।*** आहाहा ! सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ होने से उत्पादव्यय ध्रुव की एकतारूप, तीनों की एकता एक समय में, समय

में भेद नहीं। जिस समय ध्रुव है उसी समय उत्पाद व्यय है। जिस समय उत्पाद व्यय (रूप) परिणमित होता है, उसी समय ध्रुव अपरिणमन स्वरूप रहता ही है। आहाहा !

उत्पादव्यय ध्रुव की एकतारूप अनुभूति जिसका लक्षण है 'ऐसी सत्ता से जीव सहित है' यह जीव पदार्थ कैसा है ? वहा से शुरू किया न, फिर शुरू करके यहाँ ले लिया सदा ही परिणमन स्वरूप स्वभाव में रहा हुआ होने से उत्पाद व्यय ध्रुव की एकता समय की अनुभूति एकरूप में रहना जिसका लक्षण है - ऐसी सत्ता से सहित है।

उत्पाद व्यय और ध्रुव तीनों सत् है, यह सत्ता है। तीनों सत्ता उन तीनों सत्ता से जीव सहित है। वह पहले जीव कहा, कैसा जीव है वह व्याख्या की। आहा ! समझ में आया ?

'इस विशेषण से जीव की सत्ता नहीं माननेवाले नास्तिक वादियों का मत खण्डित हुआ'। कौन जाने जीव कहाँ है ? यहाँ - ऐसा माननेवाले नास्तिक... पुरुष को (जीव को) अपरिणामी माननेवाले सांख्यवादियों का निराकरण (हुआ)। आत्मा है वह बदलता नहीं कायम एक रूप रहता है - ऐसी मान्यतावालों का यह निराकरण किया। है न ? (जीव का) परिणमन स्वभाव कहने से हुआ। 'नैयायिकों और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते है' सत् है उसका एक ही रूप मानते (है) बौद्ध सत्ता को क्षणिक मानते हैं 'एक समय की सत्तावाला ही बौद्ध मानते हैं, उनका निराकरण सत्ता (को) उत्पाद व्यय ध्रुव मानने से हुआ। आहाहा !'

अर्थ करनेवाले पण्डित भी... उत्पाद व्यय सांख्य मानते नहीं, बौद्ध ध्रुव मानते नहीं। अर्थात दोनों का निषेध हुआ, उत्पादव्यय ध्रुव स्वरूप ही यह वस्तु है। एक ही समय में एकता रूप वस्तु है। - ऐसा ही यह जीव नाम का पदार्थ है। विशेष कहेंगे.....

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)